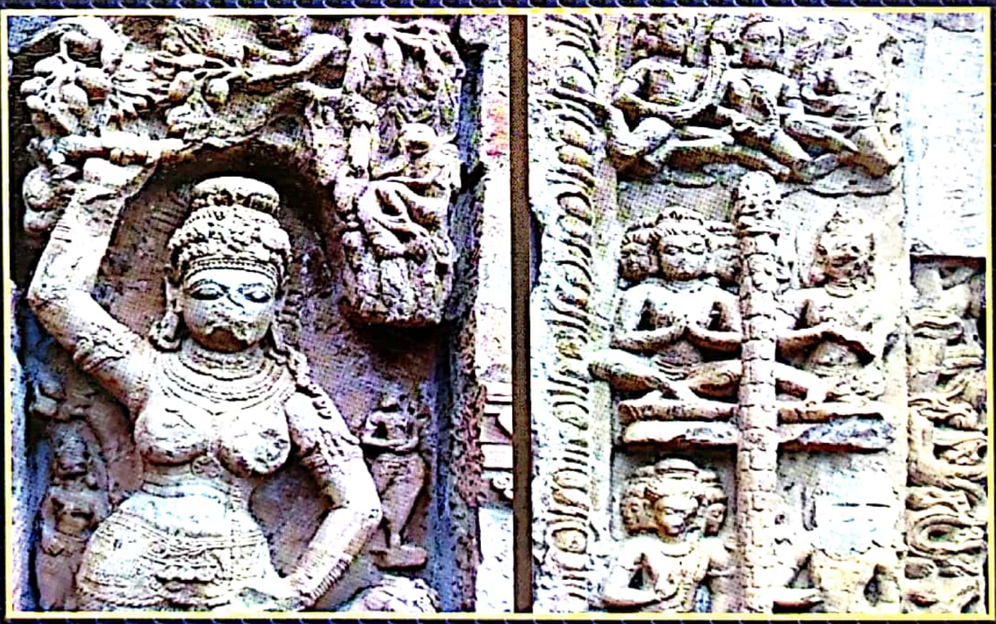
ISSN : 0975-5756

कला-वैभव

KALA - VAIBHAV

(UGC CARE Listed Journal)

अंक-27 (वर्ष 2020-21)
विभागीय शोध - जर्नल (रेफरीड)



प्रधान संपादक
डॉ. मंगलानंद झा

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

Scanned with CamScanner

शुभकामनाओं सहित लेखकीय प्रति सप्रेम भेंट,
04.02.22

कला–वैभव

KALA-VAIBHAV

(UGC CARE Listed Journal)
अंक 27 वर्ष 2020–21

●
संरक्षक
श्रीमती (डॉ.) मोक्षदा (ममता) चन्द्राकर,
(पद्मश्री से सम्मानित),
कुलपति,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

●
सम्पादक मण्डल
प्रोफेसर (डॉ.) मृदुला शुक्ल,
अधिष्ठाता – कला संकाय,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

●
प्रोफेसर (डॉ.) इन्द्रदेव तिवारी,
कुलसचिव,
विभागाध्यक्ष, अंग्रेजी–विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

●
पद्मश्री डॉ. अरुण कुमार शर्मा,
सेवानिवृत, अधीक्षण पुरातत्त्व विद् एवं पूर्व
पुरातात्त्विक सलाहकार, छ.ग. शासन, रायपुर।

●
आचार्य (डॉ.) रमेन्द्रनाथ मिश्र,
इतिहासकार, रायपुर।

●
डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी,
पूर्व विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़,
(छत्तीसगढ़)।

●
प्रोफेसर (डॉ.) शिवाकान्त द्विवेदी,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।

●
प्रधान सम्पादक
डॉ. मंगलानंद झा,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़
(छत्तीसगढ़)।

Scanned with CamScanner

कला–वैभव

KALA-VAIBHAV

(UGC CARE Listed Journal)

अंक 27 वर्ष 2020–21

भारतीय कला, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व, साहित्य का वार्षिक शोध–जर्नल (रेफरीड)

(Included in UGC CARE List)

© प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

प्रकाशक : इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

ISSN : 0975.5756

मुद्रक :– सर्वप्रिय प्रकाशन, न्यू चंगोराभाठा, रायपुर (छत्तीसगढ़)

•

प्रधान संपादक : डॉ. मगलानंद झा, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

•

विशिष्ट आभार :

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।
छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर।

कला–वैभव (अंक 27) में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में वर्णित विषय–वस्तु/तथ्यों तथा निष्कर्षों इत्यादि का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों/रचनाकारों का है। संपादक अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

: संपर्क :

कुलसचिव – 07820 234232
डॉ. एम.एन.झा – 94241–11394
ई–मेल – kalavaiav@iksv.ac.in

आवरण चित्र :– कंठी देवल मंदिर, रतनपुर (छत्तीसगढ़)

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

शोध–लेख

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

छत्तीसगढ़ का प्रयाग–राजिम और पुरातत्त्व

मोहन कुमार साहू

पैरी–महानदी संगम के पूर्व में बसा राजिम अत्यन्त प्राचीन समय से छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। राजिम कला संस्कृति एवं पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह छत्तीसगढ़ प्रदेश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल है।[1] यहाँ के धार्मिक जीवन में पैरी–महानदी संगम को पवित्रतम स्थान प्राप्त है। श्राद्ध, तर्पण, पर्वस्नान, दान आदि धार्मिक कृत्यों के लिए इसकी सार्वजनीन महत्ता आंचलिक लोगों की परम्परागत आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास की स्वाभाविक परिणति के रूप में सद्यः प्रवाहमान है। क्षेत्रीय लोग इस संगम को प्रयाग संगम के समान ही पवित्र मानते है। उनका विश्वास है कि यहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा मृत्युपरान्त वह विष्णुलोक प्राप्त करता है। छत्तीसगढ़ प्रदेश में महानदी का वही स्थान है जो भारत में गंगा है। यहाँ का सबसे बड़ा पर्व महाशिवरात्रि है। पर्वायोजन माघ मास की पूर्णिमा से प्रारंभ होकर फाल्गुन मास की महाशिवरात्रि (कृष्ण पक्ष–त्रयोदशी) तक चलता है। इस अवसर पर छत्तीसगढ़ के कोने–कोने से सहस्त्रों यात्री संगम–स्नान करने तथा भगवान राजीवलोचन एवं कुलेश्वर महादेव के दर्शन करने आते हैं।

राजिम से प्राप्त पांडुवंशी नरेश तीवरदेव का ताम्रपत्र भी उसके पांडुवंश कालीन स्थिति का प्रमाण है। सिरपुर की ही भाँति पांडुवंशी काल के पश्चात् सभी कालों की कला छाप के उदाहरण राजिम में प्राप्त होते है।

राजिम स्थित राजीवलोचन मंदिर की योजना सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर के ही समान है। मंदिर के महामण्डप के स्तंभ जो कि निचले भाग में सादे एवं शीर्ष भाग में अत्यन्त ही अलंकृत है, गुप्तोत्तर कालीन कला के प्रतीक है। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर के महामण्डप के स्तंभ नाव द्वारा राजिम लाये गये थे। मंदिर के अर्द्धस्तंभ एवं उन पर उत्कीर्ण देवताओं एवं परिचारिकाओं की मूर्तियाँ पाण्डुवंशी कला का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार राजिव लोचन मंदिर के दक्षिण पूर्वी देव मंदिर में वामन की प्रतिमा शरभपुरीय कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार राजिम में स्थित रामचँद्र मंदिर पांडुवंश कालीन व कलचुरि कालीन कला के उदाहरण प्रस्तुत करता है। राजिम की यह शिल्प एवं स्थापत्य कला सिरपुर की कला का अनुवर्तन है और इस बात का प्रमाण है कि सिरपुर में जिस कला का जन्म एवं विकास हुआ उसका एक केन्द्र महानदी के तटपर स्थित राजिम भी था।

राजीव लोचन मंदिर की वास्तु संरचना :–

धार्मिक तीर्थ स्थल राजिम रायपुर से 45 कि.मी. दक्षिण में महानदी के दक्षिण तट पर स्थित जहाँ पैरी एवं सोढूंर नदी का महानदी में संगम होता है। इसका प्राचीन नाम 'कमल क्षेत्र' एवं 'पद्मपुर' था।[2] इसे छत्तीसगढ़ का 'प्रयाग' कहा जाता 3 है। राजिम में राजीव लोचन देवालय में विष्णु भगवान की पूजा होती है, राजेश्वर, दानेश्वर एवं रामचँद्र मंदिर इस समूह के अन्य महत्वपूर्ण मंदिर है। यहाँ कुलेश्वर महादेव का भी मंदिर है जो ऊँची जगती पर निर्मित है। इस मंदिर के तल विन्यास में गर्भगृह, अंतराल एवं मण्डप कुल तीन अंग है। मण्डप की भित्ति में कलचुरि शासक जगपालदेव अथवा जगतदेव का प्रस्तर अभिलेख जुड़ा हुआ है। यह स्मारक क्षेत्रीयकला एवं स्थापत्य का सुंदर नमूना है।

अपनी वास्तु संरचना में छत्तीसगढ़ के अन्य इष्टिका मंदिरों से भिन्न होने के कारण यहाँ इसका विवरण अपेक्षित है। राजीव लोचन मंदिर पंचायतन शैली 4 में बना है। इसके चारों कोनों पर चार छोटे–छोटे मंदिर है बीच में बड़ा मंदिर है। पश्चिमी भाग पर गोपुरम की व्यवस्था की गई है जो दक्षिण वास्तु कला का प्रतीक है। इस मंदिर को ऊँचे

Scanned with CamScanner

मंच पर बनाया गया है। इसमें गर्भगृह, अंतराल तथा मंडप का समावेश है तथा अपनी मूल अवस्था में है। शिखर और मण्डप में अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

गर्भगृह का तल छंद, कुम्भ, कलश तथा अशोक की पत्तियों से युक्त है। प्रवेश के लिए उत्तर–दक्षिण दो सोपानों का प्रबंध है। प्रवेश द्वार के शाखा पर अनेक कला कृत्तियाँ उकेरी गई है। जिसमें लता–पुष्प, क्रिड़ारत नटयक्षों का सुन्दर अंलकरण प्राप्त है। इस मंदिर के गोपुरम में सिरदल पर सिरपुर के समान शेषशायी विष्णु का अंकन किया गया है। इस मंदिर का निर्माण संभवतः ईसा की 5वीं शती के अंतिम चरण में हुई होगी। इस मंदिर में लगे अभिलेख के अनुसार नलशासक विलासतुंग लगभग 600 ई. में इस मंदिर का निर्माण किया होगा।

राजिम की मूर्तिकला :– प्राचीन भारतीय मूर्तिकला का सीधा संबंध लोगों की भावना और आस्था से रहा है। भौतिक जगत और आध्यात्मिक दोनों ही स्तरों पर रस प्राप्त होता है5। संपूर्ण ललित कलाएँ मूर्तिकला पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मूर्तिकला अपने विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने का सशक्त माध्यम है। जिसमें अपने आंतरिक भाव एवं बाहय भाव को प्रदर्शित किया जा सकता है। आध्यात्मिक संस्कृति में मूर्तिकला का सृजन, संरक्षण और संवर्धन होता रहा है।

राजिम में विकसित मूर्तिकला तथा इसकी वर्तमान में उपलब्ध अनेकानेक कृतियों के संबंध में भी उक्त बातें यथावत रूप में चरितार्थ होता है। राजिम से प्राप्त कला की इन महानतम कृत्तियों का निर्माण मात्र से दर्शाता है। मूर्तिकला के सफल रूपायन में शिल्पकारों की सफलता के लिए राजनीतिक स्थिरता, प्रशासनिक प्रश्रय, शांति और सुव्यवस्था आदि का प्रत्यक्ष योगदान होना स्वतः प्रमाणित होता है।

राजिम की मूर्तिकला में शिल्पकारों के द्वारा परम्परागत शिल्प शास्त्रों का पालन किया गया है। यहाँ की मूर्तियों में मानवीय, अर्ध दैवीय अथवा दैवीय प्रतिमाओं में अंग–विन्यास, रूपमण्डन, भाव–भंगिमा निर्देशन, संबंधी तकनीक एवं शैली आदि में अतिशय एकरूपता दिखाई पड़ता है।

अन्य स्थानों में मल्लार, सिरपुर, रतनपुर अथवा जाँजगीर आदि से प्राप्त कतिपय अपवादों को छोड़कर शेष मूर्तियों की निर्माण शैली तथा भावाभिव्यंजना में सर्वत्र समरूपता दिखायी देती है।

राजिम की मूर्तिकला की विशेषताएँ –

राजिम में निर्मित की गई मूर्तियों में अधिकतर त्रिभंग मुद्रा में बनी है। लयात्मकता, कोमलता और रसात्मकता आदि सौंदर्य प्रदान करने में सक्षम है। शिल्पी के द्वारा शिल्पशास्त्र का ध्यान रखा गया जिसमें प्रतिमा लक्षण, भावभंगिमायें, शाररिक भाषाएँ प्रमुख है। मूर्तियों में मौलिकता एवं सजीवता का प्रमाण दिखता है। शिल्पकारों ने आक्रमक शैली भाव का चयन किया गया। यहाँ की प्रतिमाओं में श्रृंगारिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वित रूप देखने को मिलता है। मूर्ति में रसों को दिखाने का प्रयास किया गया है। नारी प्रतिमाओं में कटि से लेकर ऊपर के अंगों को ढंका गया है। वस्त्र के किनारे में लहरदार लाइनें है। जो कलात्मकता की ओर संकेत करता है। वस्त्रों के चुन्नटों को कलात्मक रूप प्रदान किया गया है। अनेक प्रकार की अलंकरणों से सजाने का प्रयास किया गया है। पुरूष मूर्तियों में यज्ञोपवीत धारण किया गया है। जिसमें यज्ञोपवीत को पुष्प–गुण्ठित लड़ी के रूप में दिखाया गया है। सभी मूर्तियों में केश–विन्यास एक समान दिखाई देता है। नारी मूर्तियों में छोटी भिदुर मुद्रिकाओं में मुड़ी हुई ललित–ललाम केश की आकर्षक अभिव्यक्ति है। पुरूष मूर्तियों में केश–विन्यास बलयित कुन्तल या स्कन्ध पर्यन्त लटकते हुए दिखाए गये हैं। पुरूष मूर्तियों के सिर के ऊपर गुम्फित जुड़े का आकार दे दिया गया है। देखने से यह बुद्ध कालीन प्रतिमा लक्षण की याद दिलाता है। इस प्रकार से राजीम की मूर्तिकला सजाया व संवारा गया है।

राजिम के प्रमुख राजवंश – महानदी और पैरी नदी के संगम पर लोमस ऋषि का आश्रम था। राजिम की एकांत भूमि ऋषि–मुनियों की तपो भूमि रही होगी। प्राचीन समय में राजिम के उत्कर्ष में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की अनुकुलता सर्वाधिक महत्व रही है। दक्षिण कोसल की धार्मिक उन्नति यहाँ की वनोंपज और खानों का भी विशेष योगदान रहा है। यहाँ हीरा मिलता है जिसका रंग शिवरी के फूल जैसा है। आज भी महानदी की

Scanned with CamScanner

रेत पर भी देखे जा सकते हैं। दक्षिण कोसल पर शासन करने वाले शरभपुरीय शासक परम वैष्णव थे। अतएव उनके राजत्व काल में वैष्णव तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध राजिम का सर्वांगीण विकास होना स्वाभाविक जान पड़ता है। उत्त्खनन से डॉ.एम.जी.दीक्षित को राजिम से वैष्णव प्रतिमाओं में नारायण तपश्चर्या मूर्ति, वामन की मूर्ति, त्रिविक्रम मूर्ति, नृसिंह की मूर्ति प्राप्त हुआ। दक्षिण कोसल पर सोमवंशी शासकों का अधिपत्य रहा जिसे पांडुवंश या पाण्डव वंश के नाम से भी जाना जाता है।

सोमवंशी राजत्व काल के जो शिलालेख, ताम्रपत्र तथा अन्य सामग्रियाँ प्राप्त हुई है। इन पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है, यह वंश अपनी उदारता, धार्मिक सहिष्णुता, विद्यानुरागी, कला प्रेमी एवं निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध रहा है। इनके कार्यकाल में दक्षिण कोसल का बहुमुखी उन्नति हुई है यही कारण है कि इसके शासन काल को दक्षिण कोसल का स्वर्ण युग कहा जाता है। इनकी राजधानी श्रीपुर थी और कला केन्द्र मल्लार था। इनके समय की दो मूर्ति राजिम से प्राप्त हुई और इस वंश के महाशिव तीवरदेव का ताम्रपत्र प्राप्त हुआ जो सिद्ध करता है राजिम में इस वंश के शासकों का कार्य क्षेत्र रहा होगा। सोमवंशियों को अपदस्थ करने का श्रेय नल–वंश के प्रतापी शासक विलासतुंग को जाता है। इसका एक मात्र प्रमाण शिलालेख राजिम के राजीवलोचन मंदिर में है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है। महाराज विलासतुंग द्वारा भगवान विष्णु के भव्य मंदिर का निर्माण किया है। नलवंश के पश्चात् दक्षिण कोसल पर कलचुरियों का शासन स्थापित हुआ। कलचुरि सामंत जगपाल देव ने यहाँ भगवान रामचँद्र का मंदिर बनवाया, इस बात का साक्ष्य राजीवलोचन मंदिर में उत्कीर्ण शिलालेख से है।

राजिम की पुरावशेषों का महत्व – सागर वि.वि. के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष प्रो.के.डी. वाजपेयी।[5] के निर्देशन में गत दो वर्ष उत्खनन हुआ। प्रो. झा के अनुसार राजिम संस्कृति का आरम्भ चालकोलिथिक युग में हुआ। और इस संस्कृति से सम्बंद्ध प्रस्तर औजार (माइक्रोलिथ्स), ताम्र औजार तथा मृत्पात्र के अवशेष भी प्राप्त हुए है। समाज में रहने वाले लोग अपने हिसाब से अपनी आवश्यकता को पुरा करता है। उत्त्खनन से उन्हें समाज से जुड़ी वस्तुओं एवं कलावशेषों का अध्ययन किया जाता है। इन पुरा सामाग्रिओं का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व है। कुछ मृत्पात्र के अवशेष वर्तमान पितईबंद नामक ग्राम से मिले हैं। पितईबंद से लेकर वर्तमान सोमेश्वर महादेव के मंदिर तक प्राप्त होता है। पैरी नदी के पश्चिम में नवागाँव से महानदी की सहायक सोंढूल के प्रवाह क्षेत्र से भी मृत्पात्र प्राप्त हुए हैं। इससे यही कहा जा सकता है कि प्राचीन नगरों का बसाहट नदियों के किनारें में बस्ती है जिससे पीने के लिए साफ पानी वर्ष भर मिलता रहे और भोजन के लिए कृषि कार्य को पर्याप्त पानी मिल सके। रामगढ़ (सरगुजा) की पहाड़ी पर स्थित जोगी मारा तथा सीता बेंगरा गुफाओं के समीप स्थलों से एन.बी.पी. के अवशेष प्राप्त हुए हैं और राजिम के एन.बी.पी. के समकक्षीय जान पड़ते हैं। राजिम से काजित भाण्डों के अवशेषों की प्राप्ती विशेष उल्लेखनीय है। भारतीय पुराविदों की धारणा है की इस प्रकार की मृत्पात्र कला का भारत में आगमन रोम–संस्कृति से संपर्क–सम्बन्ध के साथ हुआ। ऐसा ही प्रमाण अहिच्छत्र के उत्खनन से मिला है। छत्तीसगढ़ से रोम सिक्कों का प्राप्त होना सिद्ध करता है कि दूसरी शताब्दी ई.स. में इस क्षेत्र का व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बंध रोम से था। यही वजह है कि छत्तीसगढ़ में काचित भाण्डों का मिलना रोम संस्कृति की देन है।

स्मारकों के अवशेष :– सोमेंश्वर महादेव मंदिर के सामने एक स्मारक का अवशेष विद्यमान है। रामचँद मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा–यमुना नदि–देवियों की मूर्तियों से अलंकृत पाख (शाखा) वाले है। कुछ मंदिर के पास खुदाई से प्राचीन भवनों के चिन्ह दिवारों के अवशेष प्राप्त हुए है। सर्वे करने पर पता चला कि दीवारों का निर्माण पक्की ईटों से की गई। इन स्मारकों और भवनों का निरीक्षण करने पर हमें ज्ञात होता है कि यहाँ के मंदिर का निर्माण 8वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी के मध्य बने हुए है।

राजिम की प्राचीन अभिलेख – पितई बंद नामक ग्राम से महेन्द्रादित्य एवं क्रमादित्य के सिक्के प्राप्त हुए है। महाशिव तीवरदेव का राजिम से ताम्रपत्र प्राप्त हुए है। राजीवलोचन मंदिर से विलासतुंग का शिलालेख उत्कीर्ण

Scanned with CamScanner

है। राजिम के स्तंभी पर उत्त्कीर्ण यात्री लेख है। कुलेश्वर महादेव मंदिर के मंडप में संरक्षित शिला लेख जगपालदेव का राजीवलोचन मंदिर में शिलालेख उत्त्कीर्ण है। इन पुरातात्विक साक्ष्य से राजिम की सांस्कृतिक, राजनीतिक, ध ार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। ऐतिहासिक दृष्टि महत्वपूर्ण पुरावशेष है। और राजवंशों के द्वारा द्वारा बनाए गए मंदिरों के बारे में जानकारी प्राप्त होता है।

निष्कर्ष :– राजिम को मोक्षधाम कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजिम की संगम स्थली में स्नान करने मात्र से पाप धुल जाते हैं। छत्तीसगढ़ में राजिम एक ऐसा पवित्र स्थल है जो धार्मिक महत्व के साथ पुरातात्त्विक महत्व का भी विशेष स्थान है। उत्खनन से प्राप्त पुरावशेष व कला–कृतियाँ यह दर्शाता है कि तत्कालीन राजवंशों का झुकाव कला–संस्कृति एवं मंदिर निर्माण के प्रति था। इनके राज दरबार में शिल्पाचार्यों का उच्च स्थान था जिनकी बदौलत अलंकृत मंदिरों का निर्माण संभव हुआ। जिनकी कला– कृतियों को आज भी देखा जा सकता है।

संदर्भः–

1. देशमुख, डी.पी. , कला परम्परा, नीता देशमुख, पृ. 9–10, 145–46, 162।
2. पाण्डे, श्यामकुमार, दक्षिण कोसल .पृ.क्र. 140–42।
3. धरोहार , संचालनालय संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग रायपुर, छत्तीसगढ़ शासन ।
4. ठाकुर, विष्णु सिंह, राजिम, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, संस्करण 1972, पृ.क्र. 106–30।
5. वही, .20–45।

शोधार्थी

प्रा. भा. इ. सं. एवं पुरा. विभाग

इंदिरा कला संगीत वि.वि. खैरागढ़, छत्तीसगढ़

●●●

Scanned with CamScanner